पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
भिंड, ता. ६-४-१९८९
श्री समयसार, गाथा ३१, ११, प्रवचन नंबर P १०

यह समयसारजी परमागम शास्त्र है। उसका प्रथम जीव नाम का अधिकार उसमें १३ गाथा चली थी। वो १ ओर ३ था। पहला १ और ३ था। अभी आँकड़ा बदलता है।३ ओर १। ३१ गाथा का स्वाध्याय करना है। उसमें ३१ गाथा का जन्म क्यू हुआ? आचार्य भगवान ने ३१ गाथा लिखी उसका कारण क्या है? कि अनादिकाल से आत्मा तीर्थंकर भगवान का देह की स्तुति करने से तीर्थंकर केवली की स्तुति होती है ऐसा मानकर, वो ज्ञेय ज्ञायक का संकर दोष उत्पन्न कर लेता है। देखता है तो देह को तीर्थंकर भगवान। तीर्थंकर और आचार्य दो शब्द है। तीर्थंकर की स्तुति और आचार्य की स्तुति। अज्ञानी जीव के पास इन्द्रियज्ञान है। अतींद्रिय ज्ञान तो नया प्रकट होता है। तो इंद्रियज्ञान से जिसको देखता है उसको ही तीर्थंकर मान लेता है। ऐसे आचार्य भगवान का देह को देखें तो देह ही आत्मा है आचार्य है ऐसा मानकर स्तुति करता था। वो स्तुति का टाइम में जो शुभभाव होता है वो आचार्य भगवान ने आगे नहीं किया मगर मिथ्यात्व होता है। शुभभाव तो होता है पाप का परिणाम तो नहि है, तो भी देह को आत्मा मानना, देह को आत्मा जानना और जानकर स्तुति करना वो तो पाप है। शुभभाव के साथ साथ भी एक मिथ्यात्व का पाप लगता था। तो आचार्य भगवान ने करुणा करके ऐसी स्तुति में भी मिथ्यात्व का जो पाप लगे तो उसका कारण क्या है? कुछ कारण होना चाहिए। तो जब कारण का नाश होगा तब ही कार्य का नाश होता है। तो ये मिथ्यात्व का, मोह का, ममत्व का नाश का उपाय बताने के लिए ३१ गाथा का जन्म हुआ। बहोत अज्ञानी जीव ने चर्चा किया, दलील किया। वहाँ तक दलील किया की सर्वज्ञ भगवान की वाणी में जिनाग़म में आता है के देह वो भी आत्मा है। आचार्य भगवान ने कहा भैया, वो सर्वज्ञ भगवान ने व्यवहार दर्शाया है। सचमुच देह और जीव कदापि एक होता नहि है। कदापी शब्द है, आहाहा! कथंचित होता है और बाद में टल जाता है ऐसा नहीं है। कदापि एक होता ही नहि है दो जीव और पुदगल। सदा से ही अपने स्वभाव से ही भिन्न - भिन्न रहता है। ऐसी गाथा है मूल में। व्यवहारनय तो यह कहता है की जीव और शरीर एक ही है। व्यवहारनय कहता है की जीव और शरीर एक ही है, आहाहा! व्यवहारनय में भेदज्ञान करने की ताक़त नहि है, एकत्व करता है। ही शब्द लगाया है। मूल कुन्दकुन्द भगवान की गाथा है। व्यवहारनय तो यह कहता है याने प्रतिपादन करता है की जीव और शरीर एक ही है किंतु निश्चयनय के अभिप्राय से जीव और शरीर कदापि, आहाहा! कोऽपि काले, एक पदार्थ हुआ ही नहि।

व्यवहारनय अन्यथा कथन करती है। व्यवहारनय का स्वरूप ही ऐसा है। व्यवहारनय बिज़ाना भाव ने बिज़ानो कहे छे। गुजराती, हिंदी कर लेना। व्यवहारनय दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है। याने जो पुदगल का भाव है उसको जीव भाव कहती है व्यवहारनय। समझे? और निश्चयनय जैसा वस्तु का स्वरूप है ऐसा कहता है। दूसरे के भाव को दूसरे का ज़रा भी कहता नहि है। यहाँ पूर्ण विराम नहि

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

है, अभी देर है, निश्चयनय दूसरे के भाव को दूसरे का ज़रा भी कहता नहि है मगर निषेध करता है। जब निषेध करे तो निश्चयनय का जन्म होता है। ऐसा पंचाध्यायी में प्रश्न आया की निश्चयनय का क्या स्वरूप है? की भैया वो तो वचनातीत है। तो भी थोड़ा बताओ इशारा तो करो हमको। कि जो ज्ञान व्यवहारनय का निषेध करता है वो ज्ञान का नाम निश्चयनय है। और आचार्य भगवान ने फ़रमाया है कि तुझे जो सम्यक्दर्शन प्रगट करना हो तो निर्दयरूप से व्यवहार का निषेध कर दे। अवश्य आत्मदर्शन होगा। दया नहि रखना के भाई ये तो अहिंसक धर्म है ना। जैन दर्शन तो "अहिंसा परमो धर्मः"। अहिंसा का अर्थ तो ये है कि जहाँ राग की उत्पत्ति, दया की उत्पत्ति नहि है उसका नाम अहिंसा है। वो जो पर्याय में राग उत्पन्न होता है वही निश्चय से हिंसा है। आहाहा! मैं एक बार महावीरजी गया था दर्शन करने के लिये जयपुर से तो वहाँ एक चक्र था। अपने महावीर चक्र निकला था ना भगवान का। तब एक,

मुमुक्षुः- निर्वाण महोत्सव पर

उत्तरः- हाँ.. थम्ब था थम्ब.. उसमें लिखा था के निश्चय से राग की उत्पत्ति इसका नाम हिंसा है, ऐसा पुरुषार्थ सिद्धिउपाय का एक श्लोक है। वहाँ लिखा था। आहाहा! ऐसे आचार्य भगवान फ़रमाते है की पराश्रीत व्यवहारनय हो असद्भूत व्यवहार हो के गुण गुणी का भेदरूप व्यवहार हो सदभूत। उसको निर्दयरूप से निषेध कर दे के ऐसा आत्मा का स्वरूप नहि है। जो व्यवहारनय बताता है ऐसा आत्मा का स्वरूप नहि है। व्यवहारनय कहता है की रागी जीव है बिल्कुल जूठी बात करती है। असत्यार्थ कथन करने वाला है। विद्वान लोग कहते है के असत्यार्थ और कलश टिकाकार ने तो ऐसी भाषा कहे दी की व्यवहारनय जुठा है, व्यवहारनय जुठा है। जुठा प्रतिपादन करता है। ४०० साल पहले की बात है राजमलजी साब, जैन धर्म के मर्मी, अनुभवी थे। आहाहा! उसने व्यवहार सब जुठा है, जुठा है, वो बात कहाँ से आया? के समयसार की ११वीं गाथा में आया है की व्यवहार समस्त प्रकारका अभूतार्थ, असत्यार्थ है। आहाहा!

तो देवलाली में चली बात तो पंडितजी बेठे थे हुकुमचंदजी साब..डॉ. भारिल्ल साब.. उसने कहा के अभूतार्थ तो है मूल संस्कृत में अमृतचंद्र आचार्य की टिका में अभूतार्थ तो है मगर असत्यार्थ लिखा है ये कहाँ से? मैंने कहा ये जयसेन आचार्य भगवान की टिका में संस्कृत में है। अभूतार्थ कहो के असत्यार्थ कहो एकार्थ बात है वाचक है। ऐसे वो जो व्यवहार को निर्दयरूप से निषेध करता है उसके वो आत्मा पर दया करता है। आहाहा! तो ये स्तुति करने से तीर्थंकर भगवान का देह की स्तुति करे और आचार्य भगवान का देह की स्तुति करे तो स्तुति हो गयी। तो वहाँ आचार्य भगवान ने, हा ठीक है शुभभाव होता है ऐसा नहि लिया मगर मिथ्यात्व हो गया ऐसा लेकर मिथ्यात्व का नाश का उपाय ३१ वीं गाथा में बताते है, के निश्चय स्तुति क्या है? व्यवहार स्तुति तो सुनी तूने अनंत बेर, काम भोग बंधन की कथा है।

व्यवहार स्तुति में आत्मा का हित होता नहि है, वो भाव से तो बंधन होता है। जो भाव से बंधन होता है वो मोक्ष मार्ग नहि है। आहाहा! ये करुणा करके लिखते है ऐसे नहि है। ठीक है शुभभाव तो भैया है। नहि, क्यूँकि व्यवहार का पक्ष तो जीव को अनादि का है और आचार्य भगवान लिखे की, ठीक है, शुभभाव तो है तो वहाँ चोट जाता है। आहाहा! मगर मिथ्यात्व लगता हे, दोष ध्यान रख। तू देह को तो आत्मा मानता है। देह के भीतर भगवान आत्मा तीर्थंकर परमात्मा है, वो तुझे दिखायी देता नहि है। और

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

आचार्य भगवान के देह को देखकर स्तुति करता है, वंदन करता है, नमस्कार करता है। वो देह, हमारे आचार्य देहवाला होता ही नहि है। हमारे आचार्य तो आनंदमूर्ति ज्ञानमूर्ति होते है। ऐसे आचार्य को हम नमस्कार करते है। आहाहा! नित्य नमस्कार करते है। आता है न,

णमो अरिहंताणं,
णमो सिद्धाणं,
णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं,

हा, एक धवल के अंदर तो ऐसा पाठ आया

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं,
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं,
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आयरियाणं,
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं।

त्रिकालवर्ती! वर्तमान को तो नमस्कार करता हूँ मगर निगोद में पंचपरमेष्ठी का द्रव्य है, उसको भी अभी नमस्कार करता हूँ। आहाहा! प्रभु। ये गुण वाचक धर्म है, जैन दर्शन व्यक्ति वाचक नहि है। व्यक्ति पूजा नहि है गुण का पूजारी है। तो ये आचार्य भगवान अभी एक अपूर्व बात जो अनंतकाल से आत्मा इन्द्रियज्ञान से पर को जानता है और अपना मान लेता है। देव शास्त्र गुरू की भक्ति करे, पूजा करे, उस टाइम भी उसकी नज़र आत्मा पर नहि है। इन्द्रियज्ञान उसके पास है तो इंद्रियज्ञान को जितने से, ये इंद्रियज्ञान को जितने से अतींद्रियज्ञान नया प्रगट होता है और वह अतींद्रियज्ञान में आत्मा का अनुभव होता है उसका नाम निश्चय केवली की स्तुति हो गई। केवली के! अभी केवली की स्तुति होती है यह काल में पंचम काल में, आहाहा! तू आत्मा केवली है। केवलज्ञान का पुंज है इसलिए केवली है। आहाहा!

ये अदभूत एक गाथा आती है। भाई साहब ने अच्छा कहा के मैं तो जानता हूँ, जानता हूँ। मतलब क्या है तेरे को? जानता हूँ, जानता हूँ, पर को जानने की आगे तू करता है तो जानता नहि है तू उसको करता मानता है। बड़ी भूल है। जानने के बहाने पर मिथ्यात्व पोषक हो जाता है। करने में तो मिथ्यात्व है ही मगर मैं राग को जानता हूँ मिथ्यात्व है। राग को जानने का तेरा प्रयोजन क्या है? तो वहाँ टिक टिक क्या करता है? क्या देखना है? तेरा कुछ मतलब लगता है वहा देखने का। आहाहा! याने जिसको देखे उसको अपना मान लेता है। यह इन्द्रियज्ञान एकत्व करता है, और अतींद्रियज्ञान विभक्त करता है। इन्द्रियज्ञान पर के साथ एकत्व कर लेता है ऐसा मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी आया कि इन्द्रियज्ञान अमूर्तिक अपने आत्मा को तो जानता ही नहि है, और देहादी मूर्तिक पदार्थ को जानकर अपना अवश्य मान लेती है। उसका नाम मिथ्यात्व है। केवल जानता नहि है देह को, अपना मानता है। अज्ञानी केवल राग को जानता नहीं है अपना मान लेता है। जाने हुए का श्रद्धान हो जाता है। जाने हुए का श्रद्धान। आत्मा को जानु और जानकर उसकी प्रतीती करो। ये सुल्टी बात। ऐसे उल्टी बात में, इंद्रियज्ञान जिसको जानता है उसमें अपनापन मान लेता है वो अज्ञान और मिथ्यादर्शन है। वो मिथ्यात्व के क्षयकी गाथा अभी आती है।

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

उसका मथाला:-

अब तीर्थंकर केवली की, तीर्थंकर केवली की निश्चय स्तुति कहते है। तीर्थंकर केवली की निश्चय स्तुति सामने देखने से नहि होती है। अंदर भीतर आत्मा को देखना जानना उसका नाम केवली कि स्तुति है, निश्चय स्तुति। व्यवहार स्तुति पर आश्रित है बंध का कारण है। निश्चय स्तुति स्वआश्रित मोक्ष का कारण है। आहाहा!

अब तीर्थंकर केवली की निश्चय स्तुति कहते है, उसमें पहले ज्ञेय ज्ञायक के संकर दोष का परिहार करके स्तुति करते है। ज्ञेय और ज्ञायक, आहाहा! कर्ता कर्म लिखा ही नहि है, लिखा है? क्यूँकि अकर्ता का कोई कर्म नहि होता है। ज्ञाता का तो कोई ज्ञेय होता है।

जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू।। ३१।।
कर इन्द्रियजय ज्ञानस्वभाव रु, अधिक जाने आत्मको,
निश्चय विषैं स्थित साधुजन, भाषैं जितेन्द्रिय उन्हींको।। ३१।।

मोह को मिथ्यात्व को जितने के लिए जो जीव इन्द्रियज्ञान को जीतेगा उसको मोह का क्षय हो जाता है। जिसको इन्द्रियज्ञान ज़िंदा रखने की भावना है, उसको मिथ्यात्व का नाश नहि होता है। इन्द्रियज्ञान ही सारा संसार का बीज है। आहाहा! बोर्ड लगाया है। बोर्ड लगाया है। ऐसा ही है। अपने पास तो आधार है ना? आहाहा! वो टोडरमलजी साहब ने भी लिखा के इन्द्रियज्ञान जिसको जानता है इसको मेरा मान लेता है। तो क्या करे? के एक दफे इन्द्रियज्ञान से जानना बंद कर दे ने। उपाय तो सरल है, ये इसमें आयेगा सब।

मूल गाथा का अर्थ, जो इंद्रियो को जीतकर, इंद्रियो को जीतकर, इंद्रियो का तीन प्रकार आयेगा। द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और भावेन्द्रिय का विषय। वो तीनो का नाम इन्द्रिय है। तीनो का नाम इन्द्रिय है। जो इन्द्रियज्ञान से ये प्रतिमा को दर्शन करता है ना, तो ये प्रतिमा भी इन्द्रिय होती है। आहाहा! विषय है ना। इन्द्रियज्ञान का विषय को भी इन्द्रिय कहा जाता है। ऐसा इसमें हे। आहाहा! शांति से सुनना। थोड़ा ऐसा करना के अपने पक्ष को अभी रखना। छोड़ देना, समुन्द्र में डाल नहि देना। थोड़ी देर, अपना पक्ष को वो पोटली में बांधकर, वो क्या कहते है? पोटली में बाँधकर, अभी बाजु में रखना थोड़े टाइम रखो और वो बात आचार्य भगवान की सही लगे तो उसको समुन्द्र में फ़ेक देना, के वो वापस आवे नहि। आहाहा! व्यवहार का पक्ष अनादि काल का जीव का है। ये ११ वी गाथा में भावार्थ में लिखते है आचार्य भगवान देखो। व्यवहार का पक्ष छूटता है। व्यवहार तो थोड़े टाइम के लिए जानने के लिए, हेयरूप जानने के लिए रह जाता है। सर्वथा अभेद हो जाता है तो बात अलग होती है।

जयचंद पंडितजी ने बहोत अच्छा भावार्थ लिखा है। यहाँ व्यवहारनय को अभूतार्थ और शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। जिसका विषय विद्यमान ना हो, आहाहा! क्या कहा? व्यवहारनय का विषय विद्यमान नहि है। उसकी अस्ती ही नहि है। जिसका विषय विद्यमान ना हो, असत्यार्थ हो उसे अभूतार्थ कहते है। आहाहा!

व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय यह है की शुद्धनय का विषय अभेद एकाकाररूप

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

नित्य द्रव्य है| नित्य द्रव्य सामान्य है, शुद्ध आत्मा, शुद्ध चैतन्य परमात्मा है| उसकी दृष्टि में भेद दिखायी नहि देता| आहाहा! अभेद में भेद हे ही नहि, तो दिखायी कहा से देवे? जहाँ गुण भेद नहि दिखायी देता है, जिसमें गुण होने पर भी, अनंतगुण होने पर भी गुण भेद दिखायी देता नहि है और पर्याय तो इसमें है ही नहि तो कहा से दिखा देवे? गुण होने पर भी गुण भेद दिखायी नहि देता, ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, सुख है| आहाहा! इसीलिए उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान, असत्यार्थ ही कहना चाहिये| दिखायी नहि देता है, इसीलिए अवस्तु अविद्यमान कहना चाहिए| जैसे आत्मा में ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, सुख है व्यवहार से कहा जाता है| जब अभेद दृष्टि में आया तो ज्ञान नहि, दर्शन नहि, चारित्र भी नहि| विद्यमान नहि है, विद्यमान होने पर भी उसके पर से लक्ष हट जाता है तो गुण भेद दिखायी देता नहि है| आहाहा! होने पर भी नहि है, होने पर भी नहि है? और पर्याय तो उसमें है ही नहि तो होने पर ऐसा शब्द लागू पड़ता नहि| क्या कहा? आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख ये गुण तो है, अनंतगुण तो है| पर्याय तो ध्रुव में है नहि| जो है गुणो अनंत वो अभेद की दृष्टि में अनंतगुण होने पर भी गुण भेद दिखायी देता नहि है| होने पर भी दिखायी देता नहि है तो जो नहि है वो तो दिखने का प्रश्न नहि है| आहाहा!

ऐसा असत्यार्थ दिखाना चाहिये| ऐसा नहि समझना चाहिए कि भेदरूप कोई वस्तु ही नहि है| ज्ञान का ज्ञेय तो है मगर ध्यान का ध्येय नहि है| ख़्याल रखना| पर्याय तो है मगर अंतर दृष्टि से देखो तो पर्याय दिखायी नहि देती है| इसका अर्थ पर्याय अवस्तु है, अलॉक में चली गयी पर्याय ऐसा है नहि| पर्याय है मगर पर्याय पर लक्ष छूट जाता है, द्रव्य पर लक्ष आ जाता है तो पर्याय होने पर भी दिखायी नहि देती| यदि ऐसा माना जाए तो जैसे वेदांत मतवाले भेदरूप अनित्य को देखकर अवस्तु माया स्वरूप कहते है और सर्व व्यापक एक अभेद नित्य शुद्ध ब्रह्म को वस्तु कहते है ऐसा सिद्ध हो जाए, इससे सर्वथा एकांत शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का ही प्रसंग आवे| आहाहा! ज्ञान का ज्ञेय में से नही निकालना, निकल सकता ही नहि मगर ध्यान का ध्येय में आता ही नहि पर्याय| क्या कहा? ध्यान का ध्येय में पर्याय आती ही नहि और ज्ञान का ज्ञेय में से जाती भी नहि, ऐसे सम्यक्एकांत पूर्वक ध्येयपूर्वक ज्ञेय हो जाता है| आहाहा! सर्वथा एकांत शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का ही प्रसंग आवे| आहाहा! इसीलिए यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि जिनवाणी स्यादवादरूप है, स्यादवाद का जन्म अनुभूत्ति के काल में होता है| आहाहा! शास्त्र का लक्ष से स्यादवाद का जन्म, अनेकांत का जन्म होता (नहीं)| आहाहा! स्यादवाद ऐसा है ऐसा विकल्प उठता है वो विकल्प में स्यादवाद नहि है| अनुभव ज्ञान में स्यादवाद है| आहाहा!

जिनवाणी स्यादवादरूप है वह प्रयोजन वश नय को मुख्य गौण करके कहती है| अभी अपना विषय अभी आया| प्राणीयो को, ऐसा हुआ, मैं मेरी बात बता दूँ २ मिनट के अंदर| मैं गुरुदेव के पास जब पहले शुरू शुरू में गया, शुरू शुरू में जाता था, तो उसको ख़्याल तो आया था के उसको व्यवहार का पक्ष है| बहोत साल पहले की बात है| अनादि का सबको व्यवहार का पक्ष है| व्यवहार का पक्ष बाद में छूट जाता है| रहता नहि है| आहाहा! तो शुरू शुरू में जब जाऊँ रविवार रविवार जब जाऊँ तो ये भावार्थ पढ़े| एक दफ़ा तो पढ़ा तब मेरे को लगा की ठीक है, दूसरे रविवार गया तो भी वही लिया, तीसरे टाइम भी वही लिया| मेरे को ख़्याल आया के मेरे पर करुणा आ गयी है| मेरा व्यवहार का पक्ष का ज्ञान उसने आ गया है के ये जीव को व्यवहार का पक्ष छूट जावे इसीलिए ये बार बार मेरेको समझाते है|

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

आहाहा! मेरा नाम नहि लेते है, किसी का नाम नहि लेते है, अपन समझ जाते है| आहाहा! ये मोस्ट इमपोर्टेंट बात है|

प्राणीयो को भेद रूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है| आहाहा! अनादि काल का मिथ्या दृष्टि है ना तो व्यवहार का पक्ष, व्यवहार तो चारित्र का दोष है, मगर व्यवहार का पक्ष श्रद्धा का दोष है, मिथ्यात्व है| पक्ष अलग बात है और व्यवहार अलग बात है| आहाहा! भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही है, व्यवहार तो अनादि काल से हे ही नहि क्यूँकि उसके पास निश्चय (है ही नहि)| निश्चय हो तो व्यवहार अनादि का आवे, बात समझे? व्यवहार तो अनादिकाल का मिथ्यादृष्टि के पास है ही नहि क्यूँकि निश्चयपूर्वक व्यवहार होता है| निश्चय तो उसके पास है ही नहीं तो व्यवहार अनादि का होता (नहि है), मगर व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल का रहता है| आहाहा! निश्चय हो तो व्यवहार होता है|

भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही है और इसका उपदेश भी ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करने से धर्म, ऐसे त्याग करने से धर्म, मगर ग्रहणपूर्वक त्याग होता है वो भूल जाता है| क्या कहा? ग्रहणपूर्वक त्याग होता है| ग्रहण सापेक्ष त्याग वह त्याग है, ग्रहण निरपेक्ष त्याग, वो धर्म का त्याग हो गया| आहाहा! त्याग के नाम से भी मिथ्यात्व पोषता है जीव, उसको मालूम पड़ता नहि है| आहाहा! ये भिंड में तो दूसरी दफे आने का तो कोई प्रश्न है नहि अभी| मोका है मोका है, तो सब, जो हमको मिला हमारे गुरु के पास से, वो सब उसकी बात मैं बताता हूँ आपको| आहाहा!

मुमुक्षुः- अभी तो कई दफे आना पड़ेगा|

उत्तरः- उसका एक बड़ा पुत्र है वक़ील साहेब, बड़ा वक़ील है ग्वालियर में भाई साहबका| उसने मेरेको नहि मिला उसने किसी को बोला की मैं तो राजकोट जाकर, ये भाई साहब ने बात किया सुमतजी ने, सुमतजी ने कहा मैं तो राजकोट जाकर भाई साहब को इधर मोटर में लाएगा| ज़रूर लाएगा| क्यूँ नहि आयेंगे, ज़रूर आयेंगे ऐसा उसका भाव आ गया| ये क्या, इसके पास तो आत्मा के अलावा कोई बात ही करता नहि है| क्या है? आहाहा! ऐसा उसको चोट लग गयी| आहाहा!

भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से भईया है तेरे पास और इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते है| परस्पर याने दो मिले व्यवहार का पक्ष वाला, व्यवहार का पक्ष वाला दो मिल जावे, हाँ बराबर इतना तो शुभभाव करना (चाहिए)| शुभभाव आवे उसको जानना ऐसी वाणी नहि आती है| भाई साहब ज़रा शांत रहो| शुभभाव करने का उपदेश देते है| शुभभाव आवे उसको जानना वो बात, अज्ञानी के पास नहि है, तो व्यवहार का उपदेश परस्पर करते है, ऐसा आहाहा! ऐसा तो करना चाहिए| प्राथमिक भूमिका है ना? प्रथम तो करना चाहिए ना? आचार्य भगवान फ़रमाते है के प्रथम आत्मा को जान| आहाहा! क्या प्रथम? प्रथम और पश्च्यात| आहाहा! प्रथम क्या करना के प्रथम आत्मा को जानना|

बेंगलोर के अंदर १७मी १८मी गाथा एक लिटी पहली लिटी लाइन प्रथम आत्मा को जानो| तीन दिन चला, तीन दिन तीन घंटे बादमें मोटर में साथमें में जाता था गुरुदेव के साथ जगह पर| मैंने कहा, के गुरुदेव ये प्रथम आत्मा को जानो एक लाइन में से बाहर निकलने का भाव ही आपको आता नहि है| दूसरी लाइन पढ़ते ही नहि है आप! प्रथम आत्मा को जानो| आहाहा! प्रथम लोकालोक को जानो, छः द्रव्य को जानो, ८ कर्म घाती अघाती, १४८ कर्म प्रकृति, बंध विछूती, उदय उदिरना, कोन से गुणस्थान में

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

कितनी प्रकृति?आहाहा! प्रथम आत्मा को (जानो)| वो सब मैंने जाना था पहला तो, पहला तो मैंने सब, सब पढ़ा है ऐसा नहि है| आहाहा! पहला सिख लिया बाद में विचार आया के उसके लक्ष से अपने प्रयोजन की सिद्धि होनेवाली नहि है, वो पर द्रव्य है| आहाहा! तो प्राणी परस्पर उपदेश भी करता है और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलंब जानकर बहुत किया है| वो मोस्ट इम्पोर्टन्ट बात है, के जिनवाणी, जिनेंद्र भगवान की वाणी में भी निश्चय का, निश्चय उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्ब जानकार बहुत किया है| जिसको निश्चय का ख़्याल नहि है उसके निश्चय स्वरूप समझाने के लिए भेदरूप व्यवहार से प्रतिपादन करते है| जैसे छठी गाथा में आया के ज्ञायक, ज्ञायक आत्मा ज्ञायक है वो ज्ञायक शब्द से जान नहि पाया वह, तो आचार्य भगवान ने कहा के ज्ञेय को जाने उसका नाम ज्ञायक है| ज्ञेय को जाने उसका नाम ज्ञायक है तो वहाँ चोट गया| अरे भगवान! ये तो ज्ञायक को नहि जानते थे ना, तहाँ तक वो भेद पर से ये असदभूत व्यवहार से जाना और कोई अंदर में जाने के, ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है ऐसे भेद, गुण भेद से भी जानने में प्रतिपादन आता है मगर वहा चोटने जैसा, पक्ष करने जैसा नहि है| जानकार बहुत किया है किंतु उसका फल संसार ही है|

जिनेंद्र भगवान की वाणी में आत्मा को समझाने के लिए भेदरूप व्यवहार का उपदेश बहोत आता है| "उपयोगों लक्षणम" आहाहा! आता है की नहि? तो लक्षण को बताने के लिए लक्षण है के लक्ष्य को बताने के लिए लक्षण है| उपयोग एक समय की पर्याय है ना| "उपयोगों लक्षणम" तो जीव का लक्षण उपयोग है| जहां उपयोग लक्षण कहा, वहाँ राग लक्षण नहि है| आहाहा! तो लक्ष्य को बताने के लिए ये पर्याय के द्वारा आत्मा का प्रतिपादन करते है, तो उपयोग को जो आत्मा मान लेवे, पर्याय को आत्मा मान लेवें तो उसको लक्ष्य ख़्याल में आता नहि है| लक्षण तो लक्षण है| लक्षण लक्ष्य नहि हो जाता है और लक्ष्य लक्षण नहि हो जाता है| लक्ष्य तो त्रीकाली है, लक्षण तो एक समयवर्ती है| "उपयोगों लक्षणम" ऐसे मगर उसका फल संसार ही है| शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहि, शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहि, उसका २ अर्थ है| एक परमार्थ अर्थ तो ऐसा है के शुद्ध आत्मा का कभी अनुभव हुआ नहि, ये परमार्थ व्याख्या है| एक दूसरी व्याख्या ऐसी है के देव शास्त्र गुरु के समीप आकर देशनालब्धि सुनने के बाद या तो शास्त्र पढ़ने के बाद भी उसको शुद्धनय का पक्ष कभी नहि आया| अनुभव कभी नहि हुआ एक बात और मैं ये शुद्धात्मा हूँ इसका यथार्थ आत्मा का, मन के द्वारा भी उसने निर्णय किया नहि| मैं अकर्ता ज्ञायक हूँ, मैं अकर्ता (ज्ञायक हूँ) ऐसा यथार्थ निर्णय भी उसने किया नहि| यथार्थ निर्णय उसका नाम भी शुद्धनय है पक्ष|

ऐसा शुद्धनय का पक्ष आया नहि है| शुद्धनय का पक्ष आने के बाद वो पक्षातीक्रांत हो जाता है| व्यवहार का पक्ष वाला पक्षातीक्रांत होता (नहि है) आहाहा! उसको अपना दोष मालूम नहि पड़ता है| अज्ञानी को अपना दोष को गुण मानता है| वो तो गुण मानता है| दूसरे को उपदेश भी ऐसा देता है| आहाहा! ये भारत का जीव के अंदर त्याग के नाम में वो लोग बहोत ठगाता है| आहाहा! बाह्य का त्याग देखकर, आहाहा! अंदर का मिथ्यात्व का ग्रहण पड़ा रहता है और बाहर का त्याग, आहाहा! वो त्याग सच्चा नहि है| ग्रहणपूर्वक त्याग होता है भैय्या| सम्यक् दर्शन का ग्रहण होता है तो मिथ्यात्व का त्याग होता है| ऐसा वीतरागी भाव प्रगट जितनी मात्रा में होता है इतनी मात्रा में आस्रव का त्याग होता है| डिग्री

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

टू डिग्री मगर ग्रहणपूर्वक त्याग होता है। आहाहा!

शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया ही नही। मैं केवल ज्ञाता हूँ। भई केवल ज्ञाता तो एकांत हो जाएगा, थोड़ा ज्ञाता भी है न कथंचित कर्ता भी है। भैय्या ऐसा नहि है। स्वभाव हमेशा सर्वथा ही होता है। स्वभाव हमेशा सर्वथा ही होता है। आत्मा ज्ञाता ही है तीनो काल ज्ञाता है। मानो के ना मानो। अपना स्वभाव छोड़ता नहि है। उसका शुद्धनय का पक्ष कभी आया नहि। पक्ष तो कभी आया नहि और उसका उपदेश भी विरल है विरल, कोई कोई जगह शुद्धनय का उपदेश। बाक़ी ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो करने का उपदेश, जहाँ देखो वहाँ करने का उपदेश. आहाहा! दान करो, शील करो, तप करो, व्रत करो आहाहा! करना आत्मा के स्वभाव में है ही नहि। होता है, व्रतादी भाव आता है साधक को, देशव्रत का भाव भी आता है। ज्ञानी करता नहि है, ५ महाव्रत का भाव आता है मगर आ जाता है। आता भी नहि है आ जाता है। आ जाता है। आने पर भी वो चले जाता है, स्वरूप में जब लीन होता है, आहाहा! आ जाता है। आने पर वो रूकता (नहि है)। क्यूँकि वो विभाव है बंध का कारण है औदयिक भाव है। ५ महाव्रत औदयिक भाव है वो निर्जरा का कारण नहि है। जो भाव से बंध होता है वो भाव से कभी निर्जरा होती (नहि है)। वो तो सिधांतिक बात है। वो तो सिधांतिक बात है। आहाहा!

शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहि और उसका उपदेश भी विरल है। वह कहीं कहीं पाया जाता है। वह कहीं कहीं पाया जाता है, सोनगढ़ का वर्तुल में है। आहाहा! वो अभी बात सोनगढ़ से बाहर निकली फ़ेल गयी बहोत सारा भारत में। ऐसा नहि है (की बाहर फ़ेली नहि)।

मुमुक्षुः- भिंड में भी हे साब, भिंड में भी हे।

उत्तरः- हाँ भिंड में भी है। ये भिंड की शिबिर कोई जुदी जात की है, ऐसा हमारे कान पर आया। इसलिए उपकारी श्रीगुरु ने, श्रीगुरु आत्मज्ञानी का नाम गुरु है। गुरु किसका नाम है? जिसको आत्मा का भान और ज्ञान होता है, आहाहा! इसका नाम गुरु है। बाक़ी गुरु नहि है कोई। नाम गुरु नहि, भाव गुरु। भाव से गुरु होता है। नाम से गुरु होता नहि है। वो तो नाम निक्षेप है। आहाहा! नाम तो रखा महावीर और बिल्ली निकले तो भाग जावे, आहाहा! महावीर कहाँ रहा वो? वो चूहा निकले उंदर तो भी भाग जावे। महावीर नाम नहि है। नाम निक्षेप की क़ीमत नहि है, भाव निक्षेप की क़ीमत है। इसीलिए उपकारी श्रीगुरु ने, आत्मज्ञानी गुरु शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकार, आहाहा! उसका उपदेश प्रधानता से दिया है की शुद्धनय भूतार्थ है, सत्यार्थ है इसका आश्रय लेने से सम्यग्दृष्टि हो सकता है। इसे जाने बिना जब तक जीव व्यवहार में मग्न है, व्यवहार का पक्ष का अर्थ ये राग में रत हो गया। राग में रत से जुदा आत्मा है उसका विचार भी नहि आता है, इतना मिथ्यात्व द्रढ हो जाता है, कर्तृत्व में। कर्तृत्व में मिथ्यात्व बहोत द्रढ होता है तो उसको विचार भी नहि आता है मानसिक ज्ञान में, के राग से ज्ञान भिन्न है ऐसा विचार भी नहि आता है। जीव व्यवहारमें मग्न है, जीव व्यवहार में मग्न है। आत्मा में मग्न नहि है। व्यवहार में मग्न याने राग में मग्न हो गया और शास्त्रज्ञान में मग्न हो गया तो ज्ञेय में मग्न है। शास्त्रज्ञान ज्ञान नहि है ज्ञेय है। परज्ञेय है, स्वज्ञेय नहि है। आहाहा! विद्वान ज्ञेय में मग्न है, सामान्य जन राग में मग्न होता है। दो ही मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! व्यवहार में मग्न है तब तक आत्मा का ज्ञान, श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक् नहि हो सकता है। इंद्रियज्ञान शास्त्रज्ञान हो, वो दोष नहि मगर उसमें मग्न नहि होना। शुभभाव तो है मगर उसमें

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

मग्न नहि होना| आर्य जीव को शुभभाव, देव गुरु शास्त्र की भक्ति, वंदन, पूजा, यात्रा का भाव, उपवास का भाव भी आवे, कोई त्याग का भाव भी आ जाता है, समझे? आ जाता है कर्ता नहि है आत्मा| आ जाता है उसको जानता है| उसको जानता है क्या? उससे भिन्न आत्मा को जानता है| आहाहा! वो कोई जानने की चीज नहि है| शुभराग कोई जानने की चीज़ नहि है| उसको जानने से शुद्धि की वृद्धि नहि होती है और आत्मा को जानने से शुद्धि की वृद्धि होती है, आनंद की वृद्धि होती है| आहाहा! शुद्धनय भूतार्थ है, सत्यार्थ है| श्रद्धान निश्चय सम्यक् नहि हो सकता| ऐसा आशय समझना| व्यवहार में मग्न है उसको सम्यक्दर्शन होता नहि है|

अभी ३१ गाथा जो इंद्रियो को जीतकर ज्ञान स्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक याने जुदा आत्मा को जानते है| स्व - पर को जानते है ऐसा नहि आया| जीतकर ज्ञान स्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक याने जुदा आत्मा को जानते है उन्हें जो निश्चयनय में स्थित साधु है, आनंद में मग्न है, आनंदवाला| ऐसे साधु पुरुष है, ज्ञानी धर्मात्मा है, साधु है, वे वास्तव में जितेंद्रिय कहते है| आहाहा! जितेंद्रिय जिन हो गया| चतुर्थ गुणस्थान में जितेंद्रिय जिन हो जाता है| मिथ्यात्व का नाश होकर जब सम्यक्दर्शन होता है तब मोह का क्षय हो जाता है| ऐसे अभी इंद्रियो के जितने का क्या तरिका है? इंद्रिया तो है| भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय भी है| द्रव्येन्द्रिय है ये सब द्रव्य इन्द्रिय है| सब पुदगल का परिणाम है, द्रव्य इन्द्रिय है| क्या उसको अलॉक में भेज देना, टुकड़ा करके? नहि..नहि..नहि..नहि.. उसके स्थान में रहने दो, उसको उसके स्थान में रहने दो, उसका ममत्व छोड़ दो| वो जानने का साधन है ऐसा मानना छोड़ दो| ये देशना लब्धि को सुनने के लिए साधन है मानना छोड़ दो| ये चक्षु है, हे तो शास्त्र का ज्ञान होता है ऐसा नहि है| सूक्ष्म बात है| आहाहा! कठिन तो पड़ती है जगत को| क्या करे? ज्ञेयकृत अशुद्धता आती है उसमें| आहाहा!

टीका- जो इंद्रियो, जो द्रव्यइंद्रियो, भावइंद्रियो तथा इंद्रियो के विषयभूत पदार्थों को तीनों को अपने से अलग करके इसका लक्ष छोड़करके, समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्न, आहाहा! समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्न, अपने आत्मा का अनुभव करते है, वे मुनि निश्चयनय से जितेंद्रिय है| जो जीव पर द्रव्य से लक्ष छोड़कर, हटकर अपना शुद्ध आत्मा को लक्ष करके अनुभव में आता है, लक्ष करता है, उसको सर्वज्ञ भगवान कहते है की जितेंद्रिय जिन हो गया, सर्वज्ञ भगवान का लघुनंदन हो गया| आहाहा! भाव द्रव्येन्द्रिय होने पर भी, भावेन्द्रिय होने पर भी और भावेन्द्रिय का विषय होने पर भी, आहाहा! जो उससे भिन्न आत्मा को जानता है, अनुभव करता है उसको सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र प्रगट होता है| उसका नाम जितेंद्रिय जिन है| इसका ख़ुलासा करते है| अभी तो शॉर्ट में किया| अब टिका याने विस्तार करते है|

अनादि अमर्यादरूप बंधपर्याय के वश, अनादिकाल से जो भावेन्द्रिय है उसका नाम भव, भावबंध है| राग का नाम भी भावबंध और इन्द्रियज्ञान का नाम भी भावबंध| उसके वश से, आहाहा! कर्म का बंध तो निमित्तरूप है, कर्म का बंध तो बाह्य है| अपना द्रव्य गुण पर्याय में आता नहि है| मगर भावबंध तो पर्याय में है| वो भावबंध का स्वरूप क्या? ये जो पर को जानने का जो अभिप्राय, मैं पर को जानता हूँ, ऐसा अभीप्राय रखकर जो इन्द्रियज्ञान प्रगट होता है, और इन्द्रियज्ञान और ज्ञायक उसमें जुदाई जानता नहि है, उसमें एकत्व करता है उसका नाम भावबंध है| वो भावबंध के वश हो गया| आहाहा! ये थोड़ी

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

बात सूक्ष्म आनेवाली है| एक ख़ुलासा ओर करना है| उपयोग लक्षण है| जो इन्द्रियज्ञान है, इन्द्रियज्ञान आत्मा का लक्षण है की नहि? के आत्मा का लक्षण नहि है, आहाहा! और अतींद्रिय ज्ञान नया प्रगट होता है वो लक्षण होने पर भी अनादि अनंत नहि है| जो लक्षण अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असम्भव दोष से रहित उसका नाम लक्षण कहा जाता है| तो "उपयोगों लक्षणम" है वो सामान्य, सामान्य लक्षण, विशेष का अभाव इसका नाम सामान्य लक्षण याने उपयोग का नाम मिथ्याज्ञान नहि, सम्यक्ज्ञान भी नहि, मतिज्ञान, केवलज्ञान भी नहि बस "उपयोगों लक्षणम"| तो उपयोग जो लक्षण है उसका नाम इन्द्रियज्ञान नहि है और उसका नाम अतीन्द्रियज्ञान भी नहि है| सामान्य ज्ञान एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीव को भी उपयोग प्रगट होता है समय समय पर| उपयोग प्रगट ना हो तो आत्मा जड़ हो जाता है| और राग प्रगट ना हो तो सिद्ध हो जाता है| राग भी प्रगट होता है अपने स्थान में, ख़्याल करना, और उपयोग अपने स्थान में प्रगट होता है| दोनों की प्रगटता होने पर भी भिन्न भिन्न रहता है आहाहा!

उपयोग में उपयोग है मगर उपयोग में राग नहि है| जो उपयोग सामान्य उपयोग है उसमें भी उपयोग है| उसमें भी राग नहि है| सूक्ष्म चर्चा है थोड़ी, आहाहा! क्यूँकि इन्द्रियज्ञान का प्रकरण आया ना तो प्रश्न आया मेरे पास के इन्द्रियज्ञान तो लक्षण नहि है और उपयोग तो लक्षण है तो ये इन्द्रियज्ञान का जन्म कैसे हो गया? तो इन्द्रियज्ञान लक्षण केवे के नहि? बिलकुल इन्द्रियज्ञान लक्षण नहि है| "उपयोगों लक्षणम" याने भवी, अभवि सब जीव के अंदर चैतन्य अनुविधायी परिणाम उपयोग प्रगट हो रहा है| आहाहा! जानना, जानना, जानना| करना, करना है? करना है ही नहि आहाहा! जानना, जानना, जानना, जानना| भाई साब ने आज अच्छा दृष्टांत दिया| मैं बहोत ख़ुश हुआ के प्रकाश होता है प्रकाश तो प्रकाश किसी बात को लेता नहि है, चोरी नहि करता है और जाता है तो कहेता है की मैं जाता हूँ मगर किसी का लिया नहि है? ऐसे ज्ञान प्रकाश का पुंज अपने को जानते जानते पर को भले जाने पर परके पाससे कुछ लेता नहि है| आहाहा!

ऐसे प्रभु उपयोगों लक्षण हे तो उपयोग प्रगट होता है और उपयोग जब प्रगट होता है तब उपयोग या तो परमुखे प्रगट होता है या तो स्वमुखे प्रगट होता है| जो स्वमुखे प्रगट होये तो उपयोग कन्वर्ट होकर अतिइन्द्रियज्ञान नाम पाता है, और वो उपयोग परमुख से, पर का लक्ष करके प्रगट होता है तो उसका नाम भावेन्द्रिय, इन्द्रियज्ञान होता है| समय एक है, उत्पाद एक समय का है, पर्याय एक है मगर उसका लक्ष कहा है? इधर लक्ष हो तो अतिइन्द्रियज्ञान नाम पाता है और बहिरमुख लक्ष तो इसका नाम इंद्रियज्ञान होता है आहाहा! इंद्रियज्ञान अंदर में से नहि आता है, अंदर में से तो उपयोग आता है, अंदर में इंद्रियज्ञान नहि है,आहाहा! उपयोग प्रगट होता है परमुख से प्रगट होता है| द्रव्येन्द्रिय का लक्ष करके प्रगट होता है| द्रव्येन्द्रिय का लक्ष, क्यूँकि श्रद्धा में है, के आँख हे तो जानता हूँ| कान हे तो सुनता हूँ वो मान्यता मिथ्यात्व है| आत्मा के पास ये द्रव्येन्द्रिय का ही अभाव है| कान बिना का हे आत्मा, नाक बिना का है| द्रव्येन्द्रिय चक्षु बिना का ही आत्मा है| वो तो जड़ का परमाणु का पिंड है वो तो स्पेर पार्ट है| ये देह तो अवयवी हे और वो उसका अवयव है| वो आत्मा अवयवी और ये इसका अवयव ऐसा हे नहि, तो शब्द जानने का साधन कान नहि है, आहाहा!

मोटी भूल है, बड़ी भारी भूल है, छोटी भूल नहि है और शिक्षा भी बड़ी हे उसकी, आहाहा! चार

गति में रुलता है। जो जानता नहि है जड़ हे उसको जानने के लिए साधन बनाता है। ये जीभ हे ना खाटा, मीठा पदार्थ को जानने के लिए, उसका अवलंबन की ज़रूर नहि है। खाटा, मीठा पदार्थ ये इसको छूता ही नहि है न उसका ज्ञान हो जाता है। वो साधन नहि है जानने का। जड़ पदार्थ चेतन को उसको सहारा लेवे तो जाने ऐसा है नहीं, वह ज्ञेय ज्ञायक संकर दोष हो गया। ये द्रव्येन्द्रिय और आत्मा को एक कर मानता है, आहाहा! सूक्ष्म बात हे थोड़ी। मगर अच्छी हे बात।

अनादि अमर्यादरूप बंध पर्याय के वश भावबंध के वश हो गया। इन्द्रियज्ञान मेरा है और इन्द्रियज्ञान से मैं जानता हूँ। भावेन्द्रिय से में जानता हूँ और द्रव्येन्द्रिय मेरे जानने में निमित्त है और सबके साथ एकत्व कर लेता है। आहाहा! कान ना हो तो सुनने में नहि आता है, आँख नहि हो तो देखने में नहि आता है। अरे! आत्मा हो तो देखने में आता है सब पदार्थ को जानता है आत्मा। ऐसी ताक़त है आत्मा की एक समय में अतींद्रियज्ञान की ताक़त अलोकिक है! सब आएगा इसमें। आहाहा! लोकालोक को जानता है ज्ञान। श्रुतज्ञान हो। आहाहा! युगपद एक समय में? हाँ एक समय में जानता है। क्रम नहि पड़ता है। वो तो अक्रमे जाने तो तो केवलज्ञान हो गया आहाहा! केवल...ज्ञान ही है वो केवलज्ञान नहि। केवल..ज्ञान ही है। केवलज्ञान में प्रत्यक्ष जानने में आता है और श्रुतज्ञान में परोक्ष। लोकालोक को पी कर बेठा है श्रुतज्ञान। पी कर कोई बाक़ी जानने का रहा (नहीं)। आहाहा! परोक्ष और प्रत्यक्ष इतना तफ़ावत है। बाक़ी सब, आहाहा! ज्ञान में ज्ञेयरूप आ गया है। उपयोगात्मक भले कम होवें, उपयोगात्मक। बाक़ी लोकालोक का प्रतिभाष अतींद्रियज्ञान में आ गया है, आहाहा! इसलिए कभी कभी श्रुतज्ञानी भी कोई जीव की पर्याय को देख लेता है, उपयोगात्मक, ओहो। कठिन पढ़ता है।

ये अनादि अमर्यादरूप बंध पर्याय के वश जिसमें समस्त स्वपर का विभाग अस्त हो गया है। इन्द्रियज्ञान स्व और पर की जुदाई होने पर भी उसको जुदा नहि देखता है। स्वपर का विभाग अस्त हो गया है। वो इसका नाम अज्ञान है। इसका नाम मिथ्यात्व है। इन्द्रियज्ञान एकत्व करता है और अतीन्द्रिय ज्ञान प्रज्ञाछैनी, आहाहा! जुदा जुदा। इन्द्रियज्ञान जुदा और अतींद्रियज्ञान जुदा, और अतींद्रियज्ञान का विषय महा पदार्थ भी जुदा..जुदा..जुदा सबको जानते है। आहाहा!

फिर से। आया ना पाठ अनादि अमर्याद बंध पर्याय के वश जिसमें समस्त स्वपर का विभाग अस्त हो गया है। बंध का वशे अस्त हो गया है। बंध के वश हो गया है। आत्मा के वश परिणती नहि आयी। इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियज्ञान का विषय वो मेरा है तो उसमें स्वपर का विभाग अस्त हो गया। अस्त समझे ने। स्वपर जुदाई दिखती नहि। एकमेक खिचड़ी हो गया। खिचड़ी समझे ना? मूँग की दाल और चावल है तो अलग अलग मगर उसका नाम मूँग की दाल भी कोई भी ना कहे चावल भी ना कहे। खिचड़ी कहे। खिचड़ी याने एकत्व, संकरदोष, आहाहा! खिचड़ी में दो पदार्थ जुदा जुदा है। एक नहि हुआ। दाल का स्वाद अलग और चावल का स्वाद अलग है। साथ में रहने पर भी साथ हुआ नहि है। ऐसे इन्द्रियज्ञान जब प्रगट होता है परसनमुख तो अपना ज्ञायक आत्मा एक और ये इन्द्रियज्ञान मेरा है तो उसके साथ एकत्व कर लेता है। कर्ता कर्म सम्बंध मान लेता है। जैसे राग के साथ कर्ता कर्म संबंध अज्ञान है ऐसे इन्द्रियज्ञान जीसको कर्म बनाता है के ये कर्म मेरा है, शास्त्रज्ञान मेरा है, आहाहा! सचमुच तो ज्ञान ही नहि है, ज्ञेय है। वो ज्ञेय और ज्ञायक, आहाहा! इन्द्रियज्ञान से, इन्द्रियज्ञान से.. इन्द्रियज्ञान से जुदा आत्मा दिखायी नहि देता

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

है| इन्द्रियज्ञान को ही आत्मा मानता है| तो आत्मा तिरोभूत हो जाता है| ख़्याल में आता नहि है|

टाइम हो गया १०.१५ हुआ न| अच्छा १०.३० तक हे| न हो तो भी बोल देता है| अच्छा ठीक है| आहाहा! समस्त| इन्द्रियज्ञान का दोष जीव को दोष ही नहि लगता है| राग का दोष तो दोष लगे ही| राग, कषाय, कषाय कि तीव्रता और कषाय की मंदता वह तो जग प्रसिद्ध दोष है| जग प्रसिद्ध (दोष है)| मगर एक अव्यक्त दोष रह गया है इन्द्रियज्ञान| वो इन्द्रियज्ञान को कोई दोष (नहीं) जानता है उसको गुण मानता है| उसको (गुण मानता है)| शास्त्रज्ञान को गुण मानता है| शास्त्रज्ञान दोष है भैया| जेसे राग, बंध का कार्य और बंध का कारण है, ऐसा इन्द्रियज्ञान भी बंध का ही कार्य है और बंध का ही कारण होता है| ऐसा आगम में लिखा है| उपयोग बंध का कारण नहि ये ख़्याल रखना| शुद्धउपयोग बंध का कारण नहि, उपयोग बंध का कारण नहि| मगर इन्द्रियज्ञान बंध का कार्य और बंध का कारण है| उपयोगों लक्षणम बंध का कारण नहि| वो उपयोग बंध का कारण ही नहि है और निर्जरा का कारण (नहि है)| क्या कहा? जो निर्जरा का कारण हो तो सबके पास उपयोग है तो निर्जरा होनी चाहिए और जो उपयोग लक्षण बंध का कारण हो तो कोई छूटे ही नहि| बाक़ी बंध का ही कारण नही हे न वो, निर्जरा का कारण नही और इन्द्रियज्ञान एकांते बंध का ही कारण है| पर सत्ता अवलंबन शील ज्ञान बंध का ही कारण है| भले चाहे धर्मात्मा के पास इन्द्रियज्ञान हो तो भी पर सत्ता अवलंबन शील ज्ञान बंध का ही कारण है| जिनेंद्र भगवान के मार्ग में कोई पक्षपात नहि है, के ज्ञानी हो गया छूट दे दो| ऐसा हे नहि| आहाहा!

तो ये छुपा चोर है| जो कषाय कि मंदता और तीव्रता वो तो प्रगट चोर है, वो तो लूटारा है, वह तो आत्मघाती भाव है, आहाहा! मगर ये छुपा चोर जो हे, बाहर का चोर घर में से चोरी करे तो तो पकड़ावे भले मगर अपना लड़का चोरी करता है रोज़ाना १०० रुपया २०० रुपया धीमे धीमे चोरी करे तो कोई ख़्याल में नही आवे ने? पूँजी साफ़ कर देवे| ये घर का चोर हे इन्द्रियज्ञान| छुपा चोर है| अव्यक्त चोर है, समाज को उसको ख़्याल नहि आता हे के इन्द्रियज्ञान भी बडा दोष है| संसार का मूल है वो| उसको छेदने से मोक्ष हो जाता है| ऐसा अभी आएगा|

Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com